6584

श्री
...रसूरि
...दिर,
...ीनगर

दिसम्बर १९८३
वर्ष ७ : अंक ८

तित्थयर

बनारसी साड़ी

इण्डियन सिल्क हाउस

कॉलेज स्ट्रीट मार्केट • कलकत्ता-१२

Prakash Trading Company

12 INDIA EXCHANGE PLACE
CALCUTTA 700001

Gram: PEARLMOON

Telephone: 22-4110
22-3323

The Bikaner Woollen Mills

Manufacturer and Exporter of Superior Quality
Woollen Yarn, Carpet Yarn and Superior
Quality Handknotted Carpets

Office and Sales Office :

BIKANER WOOLLEN MILLS

Post Box No. 24
Bikaner, Rajasthan
Phones : Off. 3204
Res. 3356

Main Office :

4 Meer Bohar Ghat Street
Calcutta-700007
Phone : 33-5969

Branch Office :

Srinath Katra : Bhadhoi
Phone : 378

तित्थयर

श्रमण संस्कृति मूलक मासिक प[त्र]

वर्ष ७ : अंक ८

दिसम्बर १९८३

□

संपादन

गणेश ललवानी

राजकुमारी बेगानी

□

आजीवन : एक सौ एक

वार्षिक शुल्क : दस रुपये

प्रस्तुत अंक : एक रुपया

□

प्रकाशक

जैन भवन

पी - २५ कलाकार स्ट्रीट

कलकत्ता-७००००७

□

मुद्रक

सुराना प्रिन्टिंग वर्क्स

२०५ रवीन्द्र सरणी

कलकत्ता-७००००७

सूची

तेलकूपी में सराक और ब्राह्मण
संस्कृति की मिश्र रूप-रेखा २२९

जैन गजल साहित्य :
एक परिचयात्मक आलेख २३५

धन्य और शालिभद्र २३९

त्रिषष्टि शलाका पुरुष चरित्र २४३

जैन पत्र-पत्रिकाएँ : कहाँ/क्या २५५

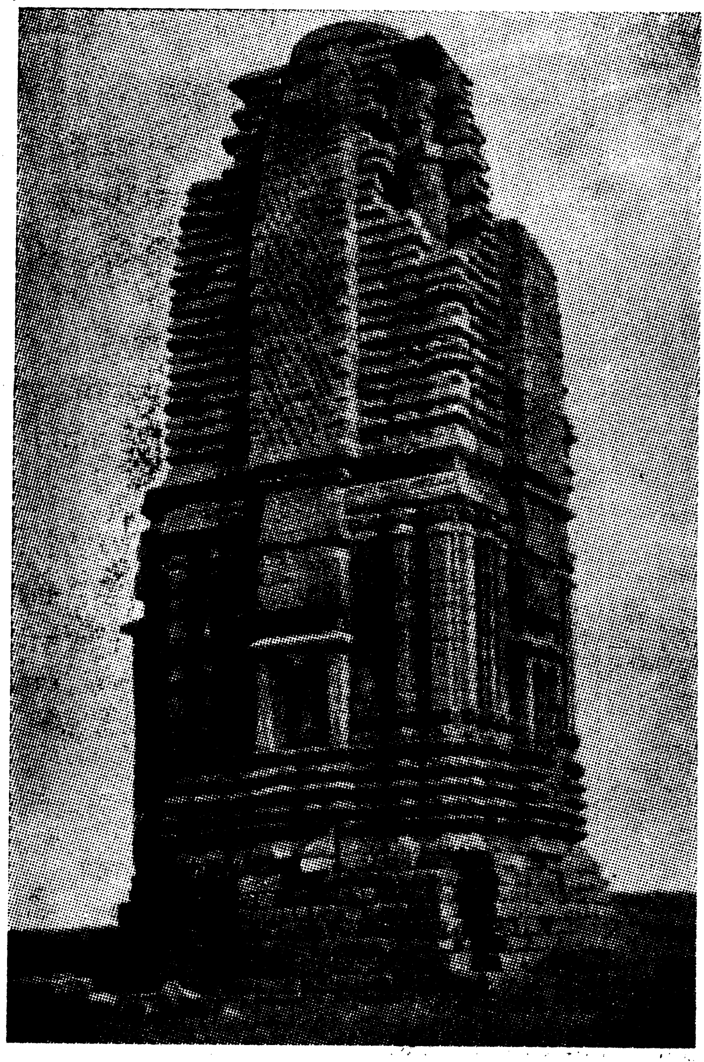

तेलकूपी का सराक जैन मन्दिर

चित्र : श्री अमल त्रिवेदी

तेलकूपी में सराक और ब्राह्मण संस्कृति की मिश्र रूप-रेखा

श्री युधिष्ठिर माजी

पुरुलिया जिला के एकमात्र तेलकूपी में प्राचीन सराक शिल्प संस्कृति के आस-पास ही ब्राह्मण संस्कृति के निदर्शन पाए जाते हैं। अतीत में सातवीं शताब्दी तक यहाँ जैन सराकों का प्रभाव था। बाद में इस पुण्य धरती पर ब्राह्मण सम्प्रदाय का प्रभाव बढ़ गया था। अतः दोनों सम्प्रदायों की प्रचेष्टा से यहाँ एक मिश्र संस्कृति की रूप-रेखा बन गयी है ऐसा लगता है।

जिस प्रचुर परिमाण में जैन तीर्थंकरों की मूर्त्तियाँ यहाँ पायी गयी हैं ठीक उसी प्रकार पौराणिक देव-देवियों की मूर्त्तियाँ भी पायी गयी हैं। इन सब देव-देवियों की मूर्त्तियों के निर्माण कौशल की शैली पर पाल शिल्पकला की छाप है।

मध्ययुग में तेलकूपी बहुत प्रसिद्ध था। इसका प्राचीन नाम है तेल काम्पी। कहा जाता है पातकूम राज्य के जमींदार विक्रमादित्य यहाँ आकर शरीर पर तेल मलवाते थे इसीलिए गाँव का नाम हुआ तेलकूपी। उस समय यहाँ दामोदर नदी में स्नान करना, एक पुण्य कार्य समझा जाता था। एतदर्थ कुछ दिन पूर्व भी हजारों मनुष्य वारुणी तिथि पर यहाँ आकर दामोदर नदी में स्नान करते थे। उस समय पुरुलिया का विख्यात् मेला भी यहाँ लगता था।

तेलकूपी में तीन विख्यात् मन्दिरों का पता लगा है। दो छोटे मन्दिर सबसे पुराने हैं। ये दोनों सराकों द्वारा निर्मित जैन मन्दिर हैं। बड़ा मन्दिर तो एकदम दामोदर के किनारे पर ही है। इस मन्दिर पर मिश्र संस्कृति की छाप है। अवश्य ही वर्त्तमान में यह मन्दिर टूट गया है। इसके ध्वंश स्तुप के मध्य और एक मन्दिर निर्मित किया गया था। इस नवीन मन्दिर का आकार बहुत कुछ शिव मन्दिर जैसा है। सम्भवतः मूल मन्दिर के टूट जाने पर मन्दिर की विख्यात् भैरवनाथ की मूर्त्ति नवीन मन्दिर में रख दी गयी है। वर्त्तमान में यह मन्दिर वक्षदेश पर्यन्त दामोदर की मिट्टी में धँस गया है।

भैरवनाथ तेलकूपी के विख्यात् और जाग्रत देवता हैं। भैरवनाथ की मूर्त्ति अवश्य ही जैन तीर्थंकर महावीर की मूर्ति है। अतीत में ये 'विरूप' नाम से पूजे जाते थे। बाद में यही अहिंसा धर्म के साधक पुरुष हिन्दू-ब्राह्मण संस्कृति के साथ युक्त होकर भैरव नाम में रूपान्तरित हो गए। ऐसा ही

हुआ है पाकबिड़रा में। ब्राह्मण संस्कृति के कालभैरव का यथार्थ रूप किस किस्म का है मैं नहीं जानता फिर भी तीर्थंकरों के दिगम्बर रूप भैरवनाथ का एक आकर्षणीय रूप कल्पित करने में इस अंचल के मनुष्यों की सहायता करता है। तेलकूपी के भैरवनाथ चौबीसवें तीर्थंकर महावीर हैं यह बात मिस्टर ई० टी० डाल्टन ने स्वीकार की थी। इस प्रसंग में उनकी उक्ति स्मरणीय है :

"There is another of these temples at Telkoopi on the Damodar, and there is an image still worshipped by the people in the neighbourhood which they call Birup. It is probably intended for the 24th Tirthankara Vira or Mahavira, the last Jina."

मन्दिर की मूर्त्ति तीर्थंकर मूर्त्ति होने पर भी मूल मन्दिर की निर्माण शैली में मिश्र संस्कृति की छाप थी। कहा जाता है कि तेलकूपी के भैरवनाथ का मन्दिर किसी राजा-महाराजाओं द्वारा निर्मित नहीं किया गया था। यह तो बनाया गया था शिल्पपतियों के द्वारा। किन्तु मन्दिर निर्माण में सराक जैन शिल्पियों के हाथों की छाप इनमें है इस विषय में कोई सन्देह नहीं है। तभी तो अनेक सोचते हैं कि यह मन्दिर मूलतः ब्राह्मण संस्कृति का होने पर भी अंशतः जैन भास्कर्य शिल्पकला द्वारा प्रभावित है।

कुछ किम्बदन्तियाँ होने पर भी तेलकूपी का अपना इतिहास है। एक समय यही गाँव इस अंचल की विख्यात् शिल्पनगरी थी। मि० डाल्टन ने शायद एक समय इस शिल्पनगरी के तोरणद्वार को खोज निकाला था। किसी समय ताम्रलिप्त से घाटाल, विष्णुपुर, छातना, रघुनाथपुर से तेलकूपी पर्यन्त एक रास्ता बनवाया गया था। तदुपरान्त यही रास्ता दामोदर पार होकर पाटलिपुत्र तक चला गया था। उस समय घाटाल, विष्णुपुर, रघुनाथपुर आदि स्थान तांत-शिल्प में उन्नत थे। शिल्पपति ताम्रलिप्त से इसी रास्ते से पाटलिपुत्र जाते थे। राह में पड़ता तेलकूपी नगर। यहाँ कुछ दिन वे विश्राम करते। फिर वर्षा के दिनों में दामोदर पार होना सहज कार्य नहीं था। उन दिनों शिल्पपतियों को कुछ दिन तेलकूपी में रहना ही पड़ता था। तब तेलकूपी एक विख्यात् सराय-सी थी। इसी प्रसंग में मि० कूपलैण्ड लिखते हैं :

"According to tradition, the temples at Telkoopi are ascribed to merchants and not to Raja or Holymen, and the

inference is that a large trading settlement sprung up to this point where the Damodar River would present at any rate in rainy seasons, a very considerable obstacle to the travellers and merchants."

तेलकूपी के इस इतिहास के परिणामस्वरूप मन्दिरों के भास्कर्य शिल्प के अतिरिक्त बहुत-सी पौराणिक देव-देवियों की मूर्त्तियों के सन्धान पाए गए हैं। ब्राह्मण संस्कृति के साथ युक्त ये सब निदर्शन वर्त्तमान शताब्दी के मध्य भाग में भी मौजूद थे। इन सब मूर्त्तियों में विष्णु, लक्ष्मी, पार्वती, दुर्गा, महिषासुर, कामदेव, रति, गणेश एवं नरसिंह उल्लेख योग्य हैं। अवश्य ही वर्त्तमान में ये सब शिल्प-निदर्शन दामोदर की मिट्टी के नीचे धँस गए हैं। यहाँ की भैरवनाथ रूपी महान् तीर्थंकर मूर्त्ति मिट्टी के अन्दर चली गयी है। इन देव-देवियों तथा तीर्थंकर मूर्त्तियों की शिल्प शैली के सम्बन्ध में अभी और अधिक प्रकाश नहीं डाला जा सकता। किन्तु हल्की-सी एक विष्णु मूर्त्ति और दो तीर्थंकर मूर्त्तियाँ तेलकूपी से हटाकर पास के गाँव गुरुभि में रख दी गई हैं।

इस विष्णुमूर्त्ति की शिल्प शैली की पर्यालोचना करने पर यहाँ की शिल्प संस्कृति का कुछ स्वरूप हम जान सकते हैं। विष्णु मूर्त्ति प्रायः चार फुट छः इंच लम्बी है। दोनों पार्श्व में यक्षिणियों की तरह लक्ष्मी-सरस्वती की मूर्त्तियाँ हैं। ये मूर्त्तियाँ सम्भवतः पाल राजाओं के समय में अर्थात् दस से ग्यारहवीं शताब्दी के मध्य ही कभी निर्मित हुई हैं। मूर्त्ति की निर्माण कला में पाल शिल्प शैली पर जैन शिल्प शैली की छाप लगती है। इस प्रकार की एक विष्णु मूर्त्ति कलकत्ते के भारतीय अजायबघर में रखी है। अजायबघर की मूर्त्ति ग्यारहवीं शताब्दी में निर्मित हुई थी। अवश्य ही इस मूर्त्ति के साथ तेलकूपी में प्राप्त विष्णु मूर्त्ति के मस्तक के आवरण अंश में कोई मेल नहीं है। यहाँ की विष्णु मूर्त्ति के मस्तक का आवरण बना है जैन शिल्प शैली में। पाक-बिड़रा में प्राप्त जैन शासन या जैन संस्कृति के साथ युक्त देवताओं के मस्तक के आवरण के साथ बहुत कुछ मिलता है इस विष्णु मूर्त्ति के मस्तक का आवरण भाग।

तेलकूपी की यह विष्णु मूर्त्ति जिस शिल्प शैली में निर्मित है उसी शिल्प शैली में निर्मित एक आकर्षक पुरुष मूर्त्ति का सन्धान मिला है तेलकूपी से सात-आठ मील पूर्व रघुनाथपुर के पास बून्दला ग्राम में। इस पुरुष मूर्त्ति के

देवी दुर्गा की तरह दस हाथ हैं। मूर्त्ति के दोनों ओर दो यक्षिणियों की मूर्त्तियाँ हैं। इस दसभुज देवता का परिचय मैं नहीं जानता। फिर भी शिल्प शैली की दृष्टि से इसमें जैन संस्कृति की छाप है। यहाँ एक पाषाण मन्दिर का ध्वंशावशेष और कुछ टूटी-फूटी जैन तीर्थंकर मूर्त्तियाँ पड़ी हैं। दसभुज की यह पुरुष मूर्त्ति तेलकूपी से ही किसी समय यहाँ लायी गयी लगती है।

इसके अतिरिक्त तेलकूपी के पास ही एक वृक्ष तले एक नारी मूर्त्ति पड़ी हुई है। यह देवी पार्वती की मूर्त्ति के रूप में ग्रामीणों द्वारा पूजी जाती है। मूर्त्ति के दोनों पार्श्व में कुछ अद्‌भुत मानव मूर्त्तियाँ भी खुदी हुई हैं। हस्तीमुख मनुष्य और अश्वमुख मनुष्यों की कथा मंगल काव्य में मिलती है। इस नारी मूर्त्ति के दाहिने पार्श्व के ऊपर एक हस्तीमुख मानव और एक अश्वमुख मानव मृदंग बजा रहा है। मूर्त्ति अक्षत नहीं है। नीचे का हिस्सा टूट गया है। देवी मूर्त्ति का मुख भी टूटा हुआ है। शिल्पकला भी उन्नत प्रकार की नहीं है। नहीं कह सकता यह मूर्त्ति हिन्दू संस्कृति की है या जैन संस्कृति की।

तेलकूपी की संस्कृति में ब्राह्मण धर्म का कितना ही प्रभाव क्यों न हो इसका प्राचीन रूप जैन संस्कृति से युक्त था इस विषय में कोई सन्देह नहीं है। यहाँ के छोटे आकार वाले दोनों मन्दिर सम्पूर्ण रूप से जैन मन्दिर हैं। बराकर मन्दिर की शिल्प शैली में ये दोनों मन्दिर बने थे। मूल भैरवनाथ के मन्दिरों के पत्थर से इन दोनों छोटे मन्दिरों के पाषाण उत्कृष्ट किस्म के हैं इसीलिए अब तक बचे हुए हैं।

आकार की दृष्टि से मूल भैरवनाथ का मन्दिर कैसा था वर्त्तमान में यह बताना सम्भव नहीं होगा। फिर भी मन्दिरों के टूटे-फूटे पत्थरों पर अलंकरण रूप में मिश्र संस्कृति की छाप मिलती है। मन्दिर के एक खण्ड में एक गणेश मूर्त्ति मिली थी। काले चिकने पत्थर की एक और गणेश मूर्त्ति यहाँ पायी गयी किन्तु अब वह दिखलाई नहीं पड़ती। लगता है यह मूर्त्ति दामोदर की मिट्टी में धँस गयी है।

भैरवनाथ के मन्दिर के टूटे-फूटे शिलाखण्डों पर कुछ ऐसी पुरुष और नारी मूर्त्तियाँ हैं जो देखने में लोक शिल्प कला की निदर्शन-सी लगती हैं। इन्हें हठात् देखने से पूरी के जगन्नाथ देव के असमाप्त रूप की बात व ध्यानमग्न तीर्थंकर मूर्त्ति की बात स्मरण हो आती है। इस प्रकार की शिल्पकला शैली की

दृष्टि से जैन संस्कृतियुक्त है या पौराणिक ब्राह्मण, शिल्प शैली से यह कहना सम्भव नहीं है।

इस समय तेलकूपी एक मृत नगरी है। तेलकूपी अब सम्पूर्ण रूप में इतिहास बन गयी है, मात्र स्मृति रह गयी है। हमारे आगामी वंशधर भविष्य में तेलकूपी नामक स्थान का सन्धान नहीं पा सकेंगे। तेलकूपी के भैरवनाथ मन्दिर की अन्तिम आरती-शिखा निर्वापित हो गयी है दामोदर नदी की परिकल्पना के अन्दर पांचेत बाँध बँधने के शेष लग्न में।

दामोदर को बाँधा गया। पाँचेत डैम से जल विद्युत उत्पन्न हुई। देश का अन्धकार दूर हुआ। किन्तु तेलकूपी की शिल्पकला नदी की मिट्टी की तह के नीचे गहन अन्धकार में सदा-सदा के लिए डूब गयी। इस समय तेलकूपी के मन्दिर चाहे न हों, देव-देवियों की मूर्त्तियाँ और जैन तीर्थंकरों की मूर्त्तियों को क्या नहीं बचाया जा सकता था? दामोदर वैली कारपोरेशन ने जब देखा—पाँचेत डैम के जल में तेलकूपी गाँव डूब जाएगा तब उन्होंने लोगों को अन्यत्र हट जाने का निर्देश दिया। उस समय इन सब मूल्यवान देव-देवियों के विग्रहों का उन्हें ध्यान क्यों नहीं आया—यह सोचकर हम अवाक् हो जाते हैं। पृथ्वी के अन्य देश के लोग अपनी पुराकीर्त्तियों का खनन कार्य द्वारा उद्धार कर रहे हैं वहाँ कितना लज्जास्पद है यह कि हमारे देश के नेताओं ने तेलकूपी के देव-देवियों के अमूल्य विग्रहों को अबाध रूप से दामोदर में समा जाने के लिए पथ बना दिया।

अन्ततः तेलकूपी के प्रसंग में आलोचना करते हुए एक विषय हमारे मन को बहुत आकृष्ट करता है। वह विषय है तेलकूपी के भैरवनाथ। तेलकूपी के भैरवनाथ और पाकबिड़रा के महाकाल भैरव दोनों ही जैन तीर्थंकरों की मूर्त्तियाँ हैं। सम्भवतः तीर्थंकर महावीर की। अतः भैरव शब्द ब्राह्मण धर्मीय संस्कार जात है या जैन धर्मीय संस्कार जात यह विषय गवेषणा का है। अनेकों के मतानुसार भैरव शब्द वीर व वीरम् शब्द से आया है। इस प्रसंग में मिस्टर कूपलैण्ड ने, मिस्टर डाल्टन लिखित आलोचना में कहा है :

"He (Mr. Dalton) placed them in the District as far back as 500 or 600 years Before Christ, identifying the colossal image now worshipped at Pakbirra under the name of Bhiram as Vira, the 24th Tirthankara."

इससे प्रमाणित होता है कि आज जो भैरव नाम से पूजे जा रहे हैं पहले वे वीरम् विरूप व वीर रूप में पूजे जाते थे। इसीलिए भैरव संस्कृति जैन धर्म जात या जैन धर्म से आगत है ऐसा सोचा जा सकता है। यहाँ के शैव धर्म में बहुत कुछ जैन धर्म और संस्कृति का प्रभाव है ऐसा प्रतीत होता है।

पुरुलिया के भैरवनाथ जिस प्रकार पूजे जाते रहे हैं उसी प्रकार पश्चिम बंगाल में अन्य कहीं पूजे जाते हैं कि नहीं मुझे ज्ञात नहीं है। तेलकूपी के भैरवनाथ व पाकबिड़रा के महाकाल भैरव धर्म संस्कृति के क्षेत्र में किस प्रकार आए एवं किस प्रकार उनका क्रमशः विकास हुआ यह अब गवेषणा का विषय है। इस अंचल के जन-साधारण की धारणा में काल भैरव होते हैं भयावह नग्न पुरुष ; बहुत कुछ जापान के 'डाइको कू' देवता की तरह। जो भी हो, तीर्थंकरों की नग्न देह ने यहाँ के मनुष्यों में भैरव संस्कृति का विकास साधन किया है। अतः धर्मीय संस्कारान्ध मनुष्यों ने महान् तीर्थंकरों के पदतल में अपने इष्ट देवता महाकाल भैरव को खोज लिया है।

जैन गजल साहित्य : एक परिचयात्मक आलेख

डा० भगवती लाल शर्मा

[पूर्वानुवृत्ति]

३० सांडेरा छन्द :

पूर्ण प्रति उपलब्ध न होने के कारण इसके रचयिता और रचनाकाल अज्ञात है। छन्द में दोहा और हाटकी इत्यादि प्रयुक्त हुए हैं। छन्द हाटकी उदाहरण स्वरूप दिया जाता है—

सकल देश मां सिर देश,
अनोपम गुणवन्त गोढाण।
वस है भल्ला सहिर अवल्ला,
सांडेरा शुभ ठाम ॥
प्रबल प्रतापी दिनकर सरिखो,
पाले राज प्रमाण।
एसो सांडेरा नगर सबाई,
परगट पुण्य प्रमाण ॥ १ ॥

३१ सिद्धाचल गज़ल :

यह खरतरगच्छीय यति कल्याण की रचना है जो उन्होंने सं० १८६४ की भाद्र शुक्ला १४ को किसी दौलत के हितार्थ बनायी।[१७] गज़ल में दोहा, हिरणफाल आदि ६६ छन्द हैं। छन्द हिरणफाल का उद्धरण दिया जा रहा है—

गुणवंत पाहु के राहगीर,
पूरत हरत तन की पीर।
भूषण वाव है भल्लीक,
वड़ घन घटा है वल्लीक ॥ १ ॥

३२ सूरत गज़ल :

इसके रचयिता तपागच्छीय यति दीप विजय हैं। गज़ल में ८३ छन्द हैं। इसकी रचना सं० १८७७ मार्गशीर्ष २ को हुई—

---

[१७] संवत अठार चोसठेक, भाद सुद चउदसी ठेक।
कीनी गज़ल दोलत हेत, चित में धार अखर समेत ॥ ६८ ॥

सवोतर सतवाँ अठार,
मिगसर मास द्वितीयासार।
वरण्या दीप श्री कविराज,
सुरत सेहर को साम्राज ॥ ८२ ॥

'सब सेहरा सिरताज, सूरत सेहर नगीनों' का वर्णन कवि ने यह लिख कर किया है—

सूरत शहर है सुथानाक, बिंदर दीपता दानाक।
अलका भूमि पै आईक, कोट-कोट सैं पड़ खाईक ॥ १ ॥
पूरे लोक से पूरेक, अमर वास कुं धुरेक।
शोभा देत है कमठाण, अट्टा पहुँचती असमान ॥ २ ॥

३३ सोजत वर्णन गज़ल :

इसके कवि तपागच्छीय पं० भक्ति विजय के शिष्य मनरूप हैं। यह गज़ल उन्होंने मरुधर नरेश महाराजा मानसिंह के समय सं० १८६३ कार्त्तिक शुक्ला १५ को बनायी—

भनु जिहाँ मानसिंह भूपत,
राग छत्तीस सुण है रत्त।
वाका तेज का वाखान,
रटते सदा राव ही रान ॥ २ ॥
संवत अढार तेसठह याच,
वलि सुद मास कार्त्तिक वाच।
पूनम तिथ के दिन पेख,
दरस ही वजल कीनी देख ॥ ६१ ॥ (छप्पय)

गज़ल में ६३ पद्य हैं। इसका अन्तिम कलश कवित्त इस तरह है—

गज़ल कही गुणवंत भला, कवि तिण मन भावे।
रीझै राव ही राण सुणै, नर अवर सरावै ॥
भवन वल अवहु वेद भेद, वांचे सु वखाणै।
चारण भाट ही चतुर जिके, गुण बोहोला जाणै ॥
सोझाली नयर करनी सुकव, जे जे ठोड़ हुँती जीती।
कवि मनरूप अरजह करै, गुन सब रीझो गहा पती ॥ ६३ ॥

इन गज़लों का वर्ण्य-विषय कोई प्रान्त नगर आदि ही नहीं रहा है, नगर

की नारियों की छवि भी आध्यात्मिक रूपक के बहाने इनमें उतारी गयी है। ऐसी एक दो उपलब्ध गजलों का परिचय दिया जाता है—

३४ नारी गज़ल :

इसके रचयिता महिमा समुद्र हैं।[१८] इस कथन से सिद्ध होता है कि इनकी रचना मुलतान में शाहजहाँ के समय में हुई—

पतिसाही सहर मुलतान,
दिसे जरकां का थांन।
कायम राजा साहजहांन,
उग्या जाणे सम्मो भाण ॥ ३४ ॥

इसमें सुनार जाति की किसी सुन्दरी का वर्णन है।[१९] कवि लिखता है—

देखि कामिनी इक खूब,
उनके अधिक इहे असलूब।
कहीयई कहसी तसु तारीफ,
देखइ मगन हो यह रीफ ॥ १ ॥
जाणे अपछरा मसहूर,
चमकइ सूर नवसों नूर।
महके स्वास वास कपूर,
पइदावार सम्मी हूर ॥ २ ॥

कवि ने कथन के भेद को समझने का इन शब्दों में आग्रह किया है—

सुरता लहइ अइशो भेद,
विप्र कि जांणइ वेद।
मोती लाल विणसा,
जांणइ कोण किम तिसा ॥ ४१ ॥

---

[१८] महिमा समुद्र मनि इल्लोल,
कीधा कछु कवि कल्लोल।
सुणकर सुख पावइ छयल,
हीं हीं हसइ मूरिख वयल ॥ ४० ॥

[१९] कामिण जात की सौन्नार, अइसी का न देखी नार।
ताकी सयल सोभा सार, कहतांम को न पावइ पार ॥ ३६ ॥

इणकी यह है तारीफ,
जडिसइ नेह हरीफ हरीफ।
महिमा समुद्र कह विचार,
सुणतां सदा सुख प्यार ॥ ४२ ॥

३५ सुन्दरी गज़ल :

इसके रचयिता जटमल नाहर हैं। इनकी झींगोर गज़ल में भी नारी वर्णन ही प्रधान रहा है—यह हम पहिले ही लिख चुके हैं। प्रस्तुत गज़ल का भी यही वर्ण्य है जिसमें नारी-सौन्दर्य के साथ-साथ उसके शील का भी वर्णन किया गया है—

सुन्दर रूप गुण गाढ़ीक,
देखी बाग मूं ठाढी कि।
सखियां वीस दस हैं साथ,
जाके रंग राते हाथ ॥ १ ॥
निरमल नीर सूं नाही क,
डंडीया लाल है लाही क।
ओढण सबे सालू लाल,
चल है मराल कैसी चाल ॥ २ ॥
सुन्दरी तुझ है शाबास,
पूजउ सकल तेरी आश।
अपने कंत सूं रस रंग,
कर तूं वरस सहस अभंग ॥

राजस्थानी में लिखित जैन गज़ल साहित्य का यह परिचयात्मक आलेख है। काव्य-रूप, वर्ण्य-विषय और भाषा वैज्ञानिक दृष्टि से इसका अध्ययन-अन्वेषण महत्वपूर्ण है। हिन्दी में यात्रात्मक साहित्य यों ही अल्प है। यह पद्यात्मक यात्रा साहित्य हिन्दी की श्री वृद्धि में सहायक होगा।

धन्य और शालिभद्र

[जैन कथानक]

श्रेणिक की राज सभा में रत्नकम्बल लेकर एक वणिक आया। राजा ने कम्बल को हाथ में लेकर देखा। बोले, 'क्या गुण है इस कम्बल में? हाँ, भार तो बिल्कुल नहीं है!'

वणिक ने कहा, 'यह तो सत्य है, किन्तु भार ही तो सब कुछ नहीं है।'

राजा ने कहा, 'तब और क्या है?'

वणिक मुस्कुराते हुए बोला, 'इससे जिस प्रकार सर्दी दूर होती है उसी प्रकार गर्मी भी।'

राजा ने रत्नकम्बल अन्तःपुर में भेजा। कम्बल देखकर और उसके विषय में सब कुछ सुनकर पटरानी चेलना ने परिचारिका से राजा को कहलाया, यह कम्बल उन्हें चाहिये ही।

किन्तु राजा वह रत्नकम्बल खरीद नहीं सके। उस रत्नकम्बल को खरीदने के लिये जितनी मुद्राओं की आवश्यकता थी उतनी मुद्रा एक रत्नकम्बल के लिए व्यय करने की शक्ति मगध के राजकोष की नहीं थी। अतः श्रेणिक को यह कहना पड़ा, 'इस रत्नकम्बल को मैं नहीं खरीद सकूँगा।' हताश होकर वणिक राज-सभा से लौट गया।

समस्त दिन राजगृह के पथों पर चक्कर काटते हुए वह श्रेष्ठी शालिभद्र के घर पहुँचा। बोला, 'इस राजगृह की इतनी ख्याति! किन्तु खेद है कि समस्त नगर में कोई ऐसा नहीं मिला जो इन रत्नकम्बलों को खरीद सकता!'

यह सुनकर शालिभद्र की माँ नीचे आई। बोली, 'हताश क्यों हो गए। लो, मैंने खरीदी तुम्हारी सब कम्बलें।'

वणिक आश्चर्यचकित हो गया। सोचने लगा, अवश्य कोई भूल हो गई है। अतः भ्रम दूर करने के लिए बोला, 'किन्तु इनकी कीमत बीस लक्ष सुवर्ण मुहरें हैं।'

भद्रा बोली, 'इसके लिए क्या चिन्ता है?'

सचमुच ही इसके लिए भद्रा को चिन्ता नहीं थी, चिन्ता तो तब हुई जब वणिक ने सोलह रत्नकम्बलें ही दीं। बत्तीस पुत्र-बधुओं के लिए उसे कम से कम बत्तीस कम्बलों की तो आवश्यकता थी ही।

किन्तु किया भी क्या जा सकता था। अतः सोलह रत्नकम्बलों के दो-दो टुकड़े करके भद्रा ने समान रूप से सबमें बाँट दिया।

उधर सन्ध्या के समय जब राजा अन्तःपुर में गए तो देखा घर में दीपक नहीं जला था। न ही चेलना ने राजा से बात की।

राजा बोले, 'क्या हुआ तुमको ?'

चेलना ने जवाब दिया, 'और क्या होगा ? मेरे लिए एक झोपड़ी बनवा दीजिए। बस वहीं चली जाऊँगी।'

राजा बोले, 'हठात् हुआ क्या ?'

चेलना मुँह घुमाए रही।

मन ही मन राजा सब कुछ समझ गए। बोले, 'ओ, यह बात ! अच्छा, मैं वणिक को बुलवाता हूँ।'

सोचने लगे, राजकोष में चाहे कितना ही अर्थाभाव हो, रत्नकम्बल खरीदे बिना मुझे शान्ति नहीं मिलेगी।

किन्तु वणिक का कहीं पता नहीं चला। खबर आई कि उसके समस्त रत्न कम्बल शालिभद्र ने खरीद लिये हैं।

राजा का मन विस्मय से भर उठा। क्या शालिभद्र इतना धनी है ?

दूसरे दिन उन्होंने अनुरोध पूर्वक कहलाया कि एक रत्नकम्बल अनुचर द्वारा भेज दें। साथ ही उसका मूल्य भी बतला दें।

यह सुनकर भद्रा ने कहा, 'महाराज को रत्नकम्बल भेजने में मूल्य का तो प्रश्न ही नहीं उठता। किन्तु रत्नकम्बल घर पर नहीं है ?'

'तब कहाँ गए ?'

भद्रा का चेहरा आरक्त हो उठा। बोली, 'यह मैं कैसे कहूँ ! मेरी पुत्र-वधुएँ किसी भी वस्तु को दुबारा व्यवहार नहीं करतीं। अतः रत्नकम्बल तो अब फेंक दिए गए।'

दूत उत्तर लेकर लौट गया। सुनकर राजा अवाक् हो गए। फिर सोचने लगे, क्या सचमुच ही शालिभद्र इतना धनी है ? अतः उन्होंने कहलाया, 'मैं शालिभद्र को देखने आ रहा हूँ।'

फिर एक दिन राजा शालिभद्र को देखने आये। घुड़साल से घोड़े निकले हाथीसाल से हाथी। आगे लोग, पीछे लश्कर।

भद्रा ने सभी की अभ्यर्थना की। वह श्रेणिक को लेकर अन्तःपुर पहुँची।

शालिभद्र का महल सात खण्ड का था। प्रथम खण्ड पर सुवर्ण स्तम्भ पर सुवर्ण की छत थी जहाँ दास-दासी रहते थे।

श्रेणिक प्रथम महल से आये द्वितीय महल में, फिर तीसरे, चौथे, पाँचवें में। वहाँ सुवर्ण दीवार पर माणिक्य के पक्षी बने हुए थे, मुक्ता के फल एवं पन्ने के पत्ते थे।

राजा ने कहा, 'अब और नहीं चला जाता, बस यहीं बैठता हूँ।'

भद्रा शालिभद्र को बुलाने गयी।

शालिभद्र कभी नीचे नहीं उतरे थे। घर के आदमियों के सिवाय किसी का मुँह नहीं देखे थे। व्यवसाय का समस्त कार्य भद्रा ही देखती थी। अतः असमय में माँ को देखकर बोले, 'माँ, तुम!'

'हाँ मैं! राजा आए हैं।'

शालिभद्र राजा को नहीं जानते थे। बोले, 'राजा? क्या चाहते हैं वे?'

भद्रा बोली, 'चाहते कुछ नहीं हैं। तुम्हारी ख्याति सुनकर केवल तुम्हें देखने आए हैं।'

शालिभद्र बोले, 'नहीं मिलूँ तो क्या हानि है?'

भद्रा बोली, 'ऐसा नहीं हो सकता। वे राजा हैं। समस्त देश के स्वामी। वही सब की रक्षा करते हैं। उनका आदेश अमान्य नहीं किया जा सकता।'

शालिभद्र ने प्रश्न किया, 'क्या वे मेरे भी स्वामी हैं?'

भद्रा मुस्कुरा कर बोली, 'हाँ बेटा।'

शालिभद्र यह सुनकर गम्भीर हो गए। वे कहने लगे, 'तो मेरा भी कोई स्वामी है, मैं ही सर्वोपरि नहीं हूँ!'

माँ बोली, 'पगला कहीं का!'

शालिभद्र को देखकर राजा लौट गए। उन्हें ऐसा प्रतीत हुआ कि वे शालिभद्र को नहीं, शिउली वन में खिला हुआ प्रभात-कालीन शिउली फूल देख रहे हैं।

किन्तु शालिभद्र उसी चिन्ता में तल्लीन हो गए। उन्हें रह-रहकर यही स्मरण हो रहा था कि मेरे ऊपर भी कोई स्वामी है।

शहनाई का स्वर अब उन्हें मधुर नहीं लगता, केश सुवास में मन मदमस्त नहीं होता। सब कुछ नीरस-सा प्रतीत होने लगा।

एक दिन शालिभद्र ने माँ से कहा, 'क्या करूँगा माँ, इतना छोटा स्वामित्व लेकर? मैं तो सर्वोपरि होना चाहता हूँ।'

यह सुनते ही माँ का हृदय काँप उठा। इसीलिए तो उसने शालिभद्र को सबसे अलग रखा था। एक दिन इसी भाँति उसके पति भी तो सब कुछ छोड़ कर चले गए थे। यह वह भूली नहीं थी।

माँ बोली, 'बेटा, सर्वोपरि बनने का पथ बड़ा कठिन है। तुम सकोगे नहीं।'

शालिभद्र बोले, 'क्यों नहीं सकूँगा?'

प्रत्युत्तर देती हुई भद्रा बोली, 'बेटा, वह संन्यास का पथ है। पैरों में काँटे चुभेंगे, समस्त देह क्षत-विक्षत हो जाएगी। क्या तुम यह सब सह सकोगे?'

भद्रा का हृदय भर आया। पुनः बोली, 'शालिभद्र! तुम्हें किस वस्तु का अभाव है? देवताओं का वैभव तुम्हारे पैरों तले है। क्या चाहिए तुम्हें?'

शालिभद्र ने कहा, 'माँ, मुझे तो बस तुम्हारा आशीर्वाद चाहिए।'

माँ बोली, 'तब ठीक है। सारा संसार एक ही दिन में तो छोड़ा नहीं जा सकता। थोड़ा-थोड़ा करके छोड़ो।'

भद्रा जानती थी कि ऐसी स्थिति में अपने ही संस्कार कभी-कभी बाधक बन जाते हैं।

शालिभद्र की बहिन सुभद्रा स्वामी की पदसेवा कर रही थी। न जाने कब अनजान में एक बूँद आँसू स्वामी के पैरों पर जा गिरा। धन्य चौंक उठे। बोले, 'सुभद्रा, तुम रो रही हो?'

सुभद्रा ने आंचल से आँसू पोंछे। बोली, 'रोऊँ नहीं तो क्या करूँ। संसार परित्याग करने के लिए शालिभद्र नित्य एक रानी छोड़ता है।'

सुनते ही धन्य हा-हा करके हँस पड़े। बोले, 'क्या? ऐसा तो कभी नहीं सुना। जब वैराग्य हो जाता है, विवेक जाग्रत हो जाता है, तब संसार तो एक साथ ही छूट जाता है।'

सुभद्रा को आघात पहुँचा। सोचने लगी, ये शालिभद्र को छोटा समझ रहे हैं। अतः कह उठी, 'कहना आसान है, करना कठिन। तुम छोड़ो देखें—'

'यह लो छोड़ा', कहते हुए धन्य मुहूर्त्तमात्र में ही संसार का परित्याग कर चले गए। वह धन, वह सम्पत्ति, वह सम्मान, वह वैभव एवं रूपसी नारियाँ किंचित मात्र भी उनके मन में वैकल्य उपस्थित नहीं कर सकीं।

सुभद्रा हृदय-विदारक हाहाकर करती हुई पथ के किनारे धूल पर अंधड़ में टूटी हुई अश्वत्थ डाल की भाँति पड़ी रही। अनुनय, विनय, क्षमा-प्रार्थना एवं अविरल अश्रुजल से भी धन्य को लौटा न सकी।

जिस दिन यह बात शालिभद्र के कानों में पड़ी, उसी दिन वे भी सर्वस्व त्याग कर भिक्षापात्र हाथ में ले निकल पड़े।

त्रिषष्टि शलाका पुरुष चरित्र

श्री हेमचन्द्राचार्य

[पूर्वानुवृत्ति]

सुवेग के कथन को सुनकर स्वबल से जगत के बल को नाश करने वाले बाहुबली मानों द्वितीय समुद्र हों इस प्रकार गम्भीर वाणी में बोले, "हे दूत ! तुम धन्य हो ! तुम बातचीत करने में अग्रणी हो इसीलिए मेरे सम्मुख बोलने में समर्थ हो सके हो। अग्रज भरत मेरे पितृ तुल्य हैं, यदि उन्होंने भाई को देखने की इच्छा प्रकट की है तब तो यह उनके योग्य ही है। किन्तु मैं इसीलिए उनके पास नहीं गया कि जो सुर-असुर और अन्य राजाओं के ऐश्वर्य से ऋद्धि सम्पन्न हैं वे मुझ-से अल्प वैभवशाली द्वारा लज्जित होंगे। साठ हजार वर्षों तक अन्य का राज्य लेने में वे संलग्न रहे यह बात ही उनके छोटे भाइयों का राज्य लेने की व्यग्रता को प्रकट करती है। यदि भ्रातृ स्नेह ही कारण होता तो भाइयों के पास एक-एक दूत भेजकर वे यह नहीं कहलवाते, राज्य छोड़ो और मेरी सेवा करो— नहीं तो युद्ध करो। लोभी तो हैं किन्तु हैं बड़े भाई। अतः उनके साथ युद्ध न कर सभी सत्ववान छोटे भाइयों ने अपने पिता के पदचिह्नों का अनुसरण कर लिया। उनका राज्य ले लेना ही छिद्रान्वेषी तुम्हारे स्वामी की बकधर्मिता को प्रकट करता है। अब वैसा ही स्नेह दिखाने के लिए वाणी प्रपञ्च की सृष्टि करने में तुम जैसे निपुण को भरत ने यहाँ भेजा है। मेरे छोटे भाइयों ने अपने राज्य उन्हें देकर व्रत ग्रहण करके जो आनन्द उन्हें दिया है वह आनन्द मेरे जाने पर क्या उन राज्य-लोभी को होगा? नहीं होगा। मैं वज्र-सा कठोर और अल्प वैभव होने पर भी भाई का अपमान होगा इस भय से उनकी सम्पत्ति लेना नहीं चाहता। वे फूल से भी कोमल हैं किन्तु कपटी हैं। तभी तो व्रत ग्रहण करने वाले छोटे भाइयों का राज्य उन्होंने ले लिया। हे दूत, भाइयों का राज्य अपहरण करनेवाले भरत की मैं उपेक्षा करता हूँ। तभी तो मैं निर्भयों में भी निर्भय हूँ। बड़ों का विनय करना उचित है। किन्तु यदि बड़ा गुणहीन हो तो उसकी विनय करना लज्जास्पद है। बड़ा यदि अभिमानी हो, कार्य-अकार्य का जिसे भान न हो और विपथगामी हो तो ऐसे गुरुजनों का भी परित्याग कर देना चाहिए। तुम कहते हो भरत सहनशील राजा हैं तो मैंने क्या उनके अश्वादि छीन लिए हैं, नगर लूट लिए हैं कि मेरे इस अविनय को वे सहन कर रहे हैं। ऐसे कार्य तो मैं दुर्जनों का प्रतिकार करने के लिए भी नहीं करता। तभी तो कहा गया है विवेक पूर्वक कार्य करने वाला सज्जन क्या

दुष्टों के कथन से कभी दूषित हुआ है ? मैं इतने दिनों नहीं गया। वे क्या निस्पृह होकर कहीं चले गए थे कि अब लौट आए हैं ? अतः मुझे उनके पास जाना होगा। वे तो भूत की तरह छिद्रान्वेषी हैं। फिर भी मैं सभी स्थान पर सावधान और निर्लोभ रहता हूँ। मेरी कौन सी भूल ग्रहण करेंगे ? मैंने भरतेश्वर से न कोई राज्य लिया है न अन्य कोई वस्तु। फिर वे मेरे स्वामी कैसे हैं ? जब उनके और मेरे स्वामी ऋषभ देव ही हैं तब उनसे मेरा स्वामी-सेवक सम्बन्ध कैसे सम्भव है ? मैं तेज का कारण हूँ। मेरे पास आने पर उनका तेज कैसे टिकेगा ? कारण तेजस्वी सूर्य के उदित होने पर अग्नि का तेज नहीं रहता। असमर्थ राजागण स्वयं स्वामी होने पर भी भरत को स्वामी कहकर उनकी सेवा करते हैं क्योंकि वे उन निर्बल राजाओं को पुरस्कार और दण्ड देने में समर्थ हैं। यदि मैं भ्रातृ-स्नेहवश उनकी सेवा करूँ फिर भी उस सेवा का संबंध उनके चक्रवर्तीत्व के साथ जुड़ेगा। कारण लोगों का मुँह बन्द नहीं किया जा सकता। मैं उनका निर्भय भाई हूँ, वे मुझे आज्ञा दे सकते हैं किन्तु उनमें कौटुम्बिक स्नेह का अवसर कहाँ ? वज्र द्वारा वज्र विनष्ट नहीं होता। वे सुरासुर और मानवों की सेवा से प्रसन्न हो सकते हैं। उससे मुझे क्या ? सज्जित रथ भी सरल मार्ग पर ही चल सकता है। वह यदि खराब राह पर जाएगा तो टूट जाएगा। इन्द्र पिताजी के भक्त हैं। इसलिए भरत को पिताजी का ज्येष्ठ पुत्र समझकर अपने अर्द्धसिंहासन पर बैठाते हैं। इसमें भरत के लिए अभिमान की कौन-सी बात है ? यह सत्य है कि भरत रूपी समुद्र में अन्य राजागण सैन्य सहित एक मुष्ठि सड़े गेहूँ के छिलके की तरह हैं किन्तु मैं असह्य तेज सम्पन्न उस समुद्र के लिए बड़वानल तुल्य हूँ। सूर्य के तेज में जैसे समस्त तेज लीन हो जाते हैं उसी प्रकार राजा भरत भी अश्व हस्ती पदातिक और सेनापति सहित मुझमें लय प्राप्त हो जाएँगे। बाल्यकाल में हस्ती की तरह मैंने उनका पैर पकड़ कर मिट्टी के ढेले की तरह आकाश में उछाल दिया था। खूब दूर आकाश में जाने के पश्चात् नीचे गिरने के समय कहीं उनकी मृत्यु न हो जाए अतः फूल की तरह उन्हें झेल लिया था किन्तु अब अपने द्वारा विजित राजाओं की चाटुकारिता भरी बातें सुनकर वे ये सब बातें भूल गए हैं। किन्तु वे सभी चाटुकार भाग जाएँगे और भरत को अकेले ही बाहुबली के हस्त द्वारा उत्पन्न वेदना सहन करनी होगी। हे दूत, तुम यहाँ से प्रस्थान करो। मेरे राज्य और जीवन की इच्छा से उन्हें यदि यहाँ आना पड़े तो आएँ। मैं तो पिता द्वारा दिए गए राज्य से ही संतुष्ट हूँ। उनका राज्य लेने की मेरी इच्छा नहीं है। अतः वहाँ जाने का मेरा कोई प्रयोजन ही दृष्टिगत नहीं होता।”

बाहुबली के इस प्रकार बोलने पर स्वामी के दृढ़ आज्ञारूपी बन्धन में आबद्ध चित्र-विचित्र शरीरी अन्य राजागण क्रोध से रक्तवर्ण बने नेत्रों से सुवेग का अवलोकन करने लगे। राजकुमारगण मारो-मारो कहते हुए ओष्ठ स्फुरित कर विचित्र भाव से उसे देखने लगे। अच्छी तरह से कमरबन्द कसे अंगरक्षक तलवार हिलाते हुए ऐसे देखने लगे मानों वे उसे मार ड लेंगे। मन्त्री को भय लगने लगा कि महाराज का कोई साहसी सैनिक उसकी हत्या न कर बैठे। उसी समय छड़ीदार का पाँव उठा और एक हाथ इस प्रकार ऊँचा हुआ मानों वह दूत की गर्दन पकड़ने को उत्सुक है। किन्तु ऐसा नहीं हुआ। उसने हाथ पकड़ कर दूत को आसन से उठा दिया। इस व्यवहार से सुवेग का मन क्षोभ से भर उठा। जो कुछ भी हुआ किन्तु वह धैर्य धारण कर सभा से बाहर निकल गया। कुपित बाहुबली के कठोर शब्दों को स्मरण कर राजद्वार के प्रहरी भी क्षुब्ध हो गए। उनमें कोई ढाल ऊँची-नीची करने लगा, कोई तलवार घुमाने लगा, किसी ने मारने के लिए चक्र हाथ में उठाया, किसी ने मुद्गर उठाया, कोई त्रिशूल झन-झनाने लगा, किसी ने तूणीर बाँधा तो किसी ने दण्ड ग्रहण कर लिया, तो कोई परशु उत्तोलित करने लगा। समस्त पदातिकों को इस प्रकार करते देख वह दूत पद-पद पर मृत्यु भय से भयभीत हो गया। मारे भय के उसके पैर सीधे नहीं पड़ रहे थे। इस प्रकार सुवेग नरसिंह के सिंहद्वार से बाहर निकला। उसने रथ पर चढ़कर लौटते हुए इस प्रकार की वार्ताएँ सुनी :

—राजद्वार से यह नया आदमी कौन निकला?

—यह राजा भरत का दूत लगता है।

—पृथ्वी पर क्या बाहुबली के अतिरिक्त और भी राजा है?

—हाँ, बाहुबली के बड़े भाई अयोध्या में राज्य करते हैं।

—इस दूत को उन्होंने यहाँ क्यों भेजा है?

—अपने भाई बाहुबली को बुलाने के लिए।

—इतने दिन हमारे राजा के भाई कहाँ थे?

—भरत क्षेत्र के छः खण्डों को जय करने गए थे।

—अब उन्हें भाई को बुलाने की इच्छा क्यों हुई?

—अन्य सामान्य राजाओं की तरह उनसे भी सेवा करवानी चाहते हैं।

—सब राजाओं को जयकर अब वे लोह के काँटों (शूल) पर क्यों चढ़ना चाहते हैं?

—इसका कारण है अखण्ड चक्रवर्तीत्व का अभिमान।

—छोटे भाई से पराजित होकर वे राजा अन्य को अपना मुँह कैसे दिखाएँगे ?

—सर्वत्र विजित व्यक्ति भविष्य में पराजय की बात नहीं सोचता।

—राजा भरत के मन्त्रियों में तब क्या चूहे जैसी बुद्धि भी किसी में नहीं है ?

—उनके कुलक्रम से आए हुए अनेक बुद्धिमान मंत्री हैं।

—तब मन्त्रियों ने भरत को सर्प का सिर खुजलाने से क्यों मना नहीं किया ?

—निवारण करना तो दूर वे उन्हें और उत्साहित कर रहे हैं। भवितव्यता ऐसी ही है :

नगरवासियों की ये सब बातें सुनते-सुनते सुवेग नगर से बाहर निकला। नगरद्वार के निकट मानों देवताओं द्वारा प्रसारित किया जा रहा हो ऐसी ऋषभदेव के पुत्र की युद्धवार्त्ता इतिहास की तरह सुनी। क्रोध भरा सुवेग जैसे-जैसे अग्रसर होता गया वैसे-वैसे मानों इसकी स्पर्द्धा कर युद्ध वार्ता भी आगे की ओर विस्तृत होती गयी। केवल वार्ता सुनकर ही राजाज्ञा की तरह प्रत्येक ग्राम प्रत्येक नगर के योद्धागण युद्ध के लिए प्रस्तुत होने लगे। योगी जैसे शरीर को मजबूत बनाता है उसी प्रकार कोई युद्ध का रथ बाहर कर नवीन धुरि आदि लगाकर उसे मजबूत बनाने लगा। कोई अपने घोड़े को अश्वशाला से बाहर निकालकर अश्वशिक्षा के लिए बने क्षेत्र में ले जाकर उसे पाँच प्रकार की गतियों से चलाकर युद्धोपयोगी कर उसका श्रम दूर करने लगा। कोई मानों प्रभु की तेजोमय मूर्ति-सी अपने खड्ग आदि आयुधों को शान पर चढ़ाकर और तीक्ष्ण करने लगा। कोई युद्ध यात्रा के समय कवचादि वहन करने के लिए ध्वनिकारी वाद्ययन्त्र-से जंगली ऊँट पकड़-पकड़ कर लाने लगा। तार्किक पुरुष जिस प्रकार सिद्धान्त को दृढ़ करता है उसी प्रकार कोई अपना तीर, कोई तूणीर, कोई सिरस्त्राण कोई कवच आदि को विशेष भाव से दृढ़ और मजबूत बनाने लगे। कोई गन्धर्व नगर से पड़े हुए तम्बू और कनातों को फैलाने लगा। मानों एक दूसरे से स्पर्द्धा करते हों ऐसे बाहुबली के प्रति प्रेमवश वे नागरिक युद्ध के लिए इस प्रकार तैयार होने लगे। राजा की भक्तिवश युद्ध में जाने को प्रस्तुत किसी व्यक्ति को यदि उसका कोई आत्मीय निवारित करता तो वह उस पर इस प्रकार क्रुद्ध हो जाता मानो वह उसका कोई नहीं है।

अनुरागवश राजा के मंगल के लिए अपना प्राण देने को प्रस्तुत लोगों के ऐसे उद्यम राह में चलते हुए सुवेग ने देखे।

युद्ध की बात सुनकर और लोगों को प्रस्तुत होते देख बाहुबली के भक्त पार्वत्य राजागण भी उनके निकट आए। गोपों की पुकार सुनकर गायें जिस प्रकार दौड़ी आती हैं उसी प्रकार उक्त राजाओं की शृंग ध्वनि सुनकर हजार-हजार किरात निकुंजों से निकल पड़े। इन सभी बलवान किरातों में कोई बाघ की पूँछ की चर्म से, कोई मयूर पुच्छ से, कोई लता से अपने केशों को शीघ्रता-पूर्वक बाँधने लगे। कोई सर्प चर्म से, कोई वृक्ष छाल से, कोई गायों के तन्तु से अपने शरीर में पहने मृगचर्म को सुदृढ़ करने लगे। बन्दरों की तरह हाथों में प्रस्तरखण्ड और धनुष लिए प्रभु भक्त श्वानों की तरह वे उछलते-उछलते अपने-अपने स्वामियों के समीप पहुँचकर एकत्रित होने लगे। वे परस्पर कहने लगे— हम भरत की सेना को समूल नष्ट कर महाराज बाहुबली के उपकार का अनुदान देंगे।

उनके इस प्रकार क्रोध भरे कार्य-कलापों को देख कर सुवेग विवेक बुद्धि से सोचने लगा—बाहुबली के अधीनस्थ उनके देश के मनुष्य युद्ध के लिए इस भाँति शीघ्रतापूर्वक तैयार हो रहे हैं मानो उन्हें अपना पितृ वैर का बदला चुकाना है। बाहुबली की सेना के अग्रभाग में युद्धाभिलाषी ये किरात ही इस ओर जो हमारी सेना आएगी उसके विनाश के लिए पर्याप्त हो रहे हैं। यहाँ तो मुझे एक व्यक्ति भी ऐसा दिखाई नहीं पड़ा जो युद्ध के लिए तैयार नहीं और बाहुबली का भक्त नहीं। यहाँ के तो हल चलाने वाले किसान भी वीर और स्वामीभक्त हैं। यह इस भूमि का प्रभाव है या बाहुबली के गुणों का? सामन्त और सैनिकों को तो वशीभूत किया जा सकता है किन्तु यहाँ की तो धरती ही बाहुबली के गुणों से आकृष्ट होकर उनकी पत्नी बन गयी है। मुझे तो लगता है बाहुबली की सेना के सम्मुख चक्री की सेना तो अग्नि के सम्मुख घास के गट्ठर-सी है। बाहुबली की सेना के आगे चक्री की सेना तुच्छ है। महावीर बाहुबली के सम्मुख चक्री स्वयं ही ऐसे लगते हैं जैसे अष्टापद के सम्मुख हस्ती शावक। यद्यपि पृथ्वी पर चक्रवर्ती और स्वर्ग में इन्द्र बलवान होते हैं किन्तु मुझे तो ऋषभदेव के ये कनिष्ठ पुत्र बाहुबली ही दोनों के अन्तर्वर्ती या दोनों के ऊर्द्धवर्ती अर्थात् दोनों से अधिक मालूम होते हैं। बाहुबली की एक थप्पड़ के आगे चक्री का चक्र और इन्द्र का वज्र निष्फल है। इस बाहुबली से विरोध करना तो भालू के कान पकड़ना और सर्प को मुष्ठि में लेने जैसा है।

बाघ जैसे एक मृग को पकड़कर सन्तुष्ट हो जाता है उसी प्रकार इस सामान्य भूमि को लेकर ही सन्तुष्ट बने बाहुबली का अपमान करना व्यर्थ ही शत्रु बनाना है। अनेक राजाओंकी सेवाओं से भी सन्तुष्ट न होकर बाहुबली को सेवा के लिए बुलाना तो केशरी सिंह को वाहन होने के लिए आमंत्रित करना है। स्वामी के हिताकांक्षी मन्त्रियों सहित मुझे भी धिक्कार है जो मैंने शत्रु-सा आचरण किया। लोग कहेंगे सुवेग ने ही वहाँ जाकर लड़ाई करवायी है। हाय, गुणों को दूषित करने वाले इस दौत्य कर्म को ही धिक्कार है। राह में इसी प्रकार सोचता विचारता सुवेग कई दिनों पश्चात् अयोध्या पहुँचा। द्वारी उसे सभागृह में ले गया। वहाँ चक्री को प्रणाम कर करबद्ध होकर सुवेग उनके सम्मुख जा बैठा। तब चक्री ने पूछा—

"सुवेग, मेरा अनुज बाहुबली कुशल तो है न? तुम बहुत जल्द लौट आए इसलिए मैं क्षुब्ध हूँ। क्या बाहुबली ने तुम्हारा अपमान किया है जो तुम इतनी जल्दी लौट आए? मेरे भाई को वीरवृत्ति दूषित होते हुए भी यह उसके योग्य ही है।"

सुवेग बोला—"देव, आपके समान अत्यंत पराक्रमशाली बाहुबली को क्षति पहुँचाए ऐसी शक्ति तो देवों में भी नहीं है। वे आपके अनुज हैं यही सोचकर मैंने पहले उन्हें यहाँ आपकी सेवा में आने के लिए हितकारी वचन विनीत भाव से कहे। तदुपरान्त औषधि की तरह तीव्र किन्तु परिणाम में हितकारी ऐसे-ऐसे कठोर वाक्य कहे। किन्तु उन्होंने न मधुर वचनों से न कटु वचनों से आपकी सेवा करना स्वीकार किया। कारण जब मनुष्यको सन्निपात हो जाता है तब कोई औषधि काम नहीं करती। बलवान बाहुबली इतने अहंकारी हैं कि वे त्रिलोक को तृणवत् समझते हैं और सिंह की तरह कोई उनका प्रतिद्वन्द्वी हो सकता है यह स्वीकार नहीं करते। मैंने जब सुषेण सेनापति और आपकी बात बतायी तो मानों आप दोनों किसी गिनती में ही नहीं हैं यह प्रकट करने के लिए इस प्रकार नाक को संकुचित किया जैसे दुर्गन्ध से नाक संकुचित हो जाती है। जब मैंने कहा—महाराज भरत ने छः खण्ड पृथ्वी को जीत लिया है तो सारी बात सुनकर अपने भुजदण्डों पर दृष्टिपात करते हुए बोले—"मैं तो अपने पितृ प्रदत्त राज्य में ही सन्तुष्ट हूँ इसलिए उधर ध्यान ही नहीं दिया तभी तो भरत ने छः खण्ड पृथ्वी को जय कर लिया।" सेवा करना तो दूर निर्भय होकर बाघिन को दुहने के लिए बुलवाने की तरह आपको युद्ध के लिए बुला रहे हैं। आपके भाई ऐसे पराक्रमी, मानी और बलवान हैं कि वे गन्धहस्ती की भाँति असह्य

है। वे अन्य किसी के वीरत्व को सहन नहीं कर सकते। उनकी सभा में इन्द्र के सामानिक देवों की तरह सामन्त राजा भी महा पराक्रमी हैं। इसीलिए उनके अभिप्राय भी उनसे भिन्न नहीं हैं। उनके राजकुमार भी राजोचित तेज से अभिमानी हैं। युद्ध के लिए उनके हाथ खुजला रहे हैं। लगता है बाहुबली से दसगुणा अधिक बलवान वे हैं। उनके अभिमानी मंत्री भी वैसे ही विचार सम्पन्न हैं। कहा भी गया है जैसा स्वामी होता है वैसा ही उसका परिवार होता है। सती स्त्री जिस प्रकार परपुरुषको सहन नहीं कर सकती उसी प्रकार उनकी अनुरागी प्रजा इतना भी नहीं जानती कि संसार में और भी कोई राजा है। जो कर देते हैं, जो बेगारी खटते हैं और उस देश के अन्य जन-साधारण भी अपने राजा के लिए प्राण तक देने को प्रस्तुत हैं। सिंह की तरह वन और पर्वतों पर रहने वाले वीर भी उनके वश में हैं। वे चाहते हैं कि उनके राजा का सम्मान किसी भी प्रकार नष्ट न हो। हे स्वामिन, और अधिक क्या कहूँ, महावीर को देखने की इच्छा से नहीं युद्ध की इच्छा से वे आपको देखना चाहते हैं। अब आप जैसा उचित समझें करें। कारण दूत मन्त्री नहीं होता वह तो केवल सत्य सन्देश मात्र पहुँचाता है।"

यह सुनकर राजा नट की तरह एक ही साथ आश्चर्य, कोप और हर्ष का अभिनय करते हुए बोले—"बचपन में खेलते समय मैंने अनुभव किया है कि बाहुबली के समान संसार में सुर-असुर और मानव कोई नहीं है। त्रिलोक के स्वामी का पुत्र और मेरा अनुज त्रिलोक को तृणवत् समझता है यह उसके लिए अतिशयोक्ति नहीं, सत्य है। ऐसे अनुज के लिए मैं भी प्रशंसा का अधिकारी हूँ। कारण एक हाथ छोटा हो और दूसरा बड़ा तो वह शोभा नहीं देता। यदि सिंह बन्धन स्वीकार करे और अष्टापद वशीभूत हो जाए तो बाहुबली को भी वश में किया जा सकता है। यदि इसे वश में कर लिया जाए तो शेष ही क्या रह जाता है? उसका अविनय मैं सहन करूँगा। इसके लिए लोग मुझे दुर्बल कहें तो कहें। समस्त वस्तुएँ पुरुषार्थ व धन से प्राप्त की जा सकती हैं परन्तु भाई विशेषकर ऐसा भाई किसी प्रकार भी प्राप्त नहीं किया जा सकता। हे मन्त्रीगण, मैंने जो कुछ कहा वह मेरे योग्य है या नहीं कहो? तुमलोगों ने वैरागियों की तरह क्यों मौन धारण कर रखा है? जो यथार्थ है वह प्रकट करो।"

बाहुबली का ऐसा अविनय और स्व-स्वामी का ऐसा क्षमायुक्त कथन सुनकर मानों आघात से दुःखित हों इस प्रकार सेनापति सुषेण बोले—"ऋषभनाथ स्वामी के पुत्र भरत के लिए क्षमा सर्वथा योग्य है किन्तु क्षमा करुणा के पात्र

के लिए ही होना उचित है। जो जिसके ग्राम में रहता है वह उसके वश में रहता है। किन्तु बाहुबली आपके राज्य में रहते हुए वचन से भी आपके वश में नहीं हैं। प्राण नाशकारी होने पर भी प्रतापी शत्रु अच्छा है किन्तु, प्रताप नाशकारी भाई अच्छा नहीं है। राजा अर्थ, सैन्य, मित्र, पुत्र यहाँ तक कि अपना शरीर देकर भी स्व-प्रताप की रक्षा करते हैं कारण प्रताप ही उनका जीवन है। आपका अपना राज्य क्या कम था जो आपने छः खण्ड पृथ्वी को जय किया? केवल अपने प्रताप के लिए ही तो? जिस प्रकार एक बार शील भंगकारी सती को असती ही कहा जाता है उसी प्रकार एक स्थान पर विनष्ट प्रताप भी सर्वत्र विनष्ट ही कहा जाता है। गृहस्थों में सभी भाइयों को द्रव्य समान रूप से दिया जाता है। किन्तु प्रतापशाली भाई की अन्य भाई उपेक्षा नहीं करते। समस्त भरतखण्ड को जय करने के पश्चात् इसबार आपकी पराजय समुद्र पार कर गोपद जल में डूब मरने जैसी है। कहीं सुना गया है या देखा गया है कि राज्य चक्रवर्त्ती का प्रतिस्पर्द्धी बनकर कोई राज्य करता है? हे प्रभु, अविनयी के प्रति भ्रातृ प्रेम रखना एक हाथ से ताली बजाने जैसा है। गणिका तुल्य स्नेह रहित बाहुबली पर राजा भरत स्नेह परायण है ऐसा कहकर आप हमें रोक सकते हैं किन्तु समस्त शत्रुओं को जयकर ही मैं अयोध्या नगरी में प्रवेश करूँगा ऐसे निश्चयकारी चक्र को आप कैसे निवारित करेंगे अर्थात् समझाएँगे? भ्रातृ रूपी शत्रु बाहुबली की उपेक्षा किसी प्रकार भी उचित नहीं है। इस सम्बन्ध में आप अन्य मन्त्रियों का मत भी पूछिए।"

सुषेण का कथन सुनकर महाराज ने अन्य मन्त्रियों की ओर देखा। तब वाचस्पति से ज्ञानी मुख्यमन्त्री बोले—"सेनापति ने जो कुछ कहा है ठीक ही कहा है—ऐसा कहने का साहस अन्य किसी में भी नहीं है। जो पराक्रम और प्रयत्न में भीरू होते हैं वे ही स्वामी के प्रताप की उपेक्षा करते हैं। स्वामी जब स्व प्रताप के लिये आज्ञा देते हैं तब सामान्य अधिकारीगण प्रायः स्वार्थानुसार उत्तर देते हैं और अपने व्यसन की वृद्धि करते हैं किन्तु सेनापति तो वायु जिस प्रकार अग्नि को वर्द्धित करती है उसी प्रकार आपके प्रताप को ही वर्द्धित कर रहे हैं। हे स्वामिन्, सेनापति चक्ररत्न की तरह अपराजित एक भी शत्रु रहते सन्तुष्ट नहीं होंगे। अतः अब आप देरी न करें। जिस प्रकार आपकी आज्ञा से सेनापति हाथ में दण्ड लेकर शत्रु को विताड़ित करते हैं उसी प्रकार प्रयाण भेरी बजवाइए। सुघोषा के शब्द से जैसे सभी देव एकत्रित हो जाते हैं उसी भाँति प्रयाण भेरी के शब्द से वाहन और परिवार सहित सैनिक उपस्थित हो जाएँ और सूर्य की तरह उत्तर दिशा के अवशिष्ट तक्षशिला की ओर

प्रताप की अभिवृद्धि के लिए आप प्रयाण करें। आप स्वयं जाकर भाई का स्नेह अवलोकन करिए एवं देखिए सुवेग का कथन सत्य है या नहीं ?"

'तब ऐसा ही हो' कहकर भरत ने मुख्य मंत्री की मन्त्रणा स्वीकार कर ली। कारण बुद्धिमान व्यक्ति दूसरों के युक्ति संगत वचनों को स्वीकार कर लेते हैं। फिर शुभदिन और मुहूर्त्त देखकर यात्रा मंगल कर महाराज ने प्रयाण के लिए पर्वत तुल्य उच्च हस्ती पर आरोहण किया। जैसे अन्य राजा की सेना हो इस प्रकार हजार-हजार सेवक रथ पर, घोड़े पर और हस्ती पर आरोहण कर प्रयाण वाद्य बजाने लगे। समान ताल से बजाए हुए शब्द से संगीतकार जिस प्रकार एकत्रित होते हैं उसी प्रकार उस प्रयाण वाद्य को सुनकर समस्त सैनिक एकत्रित हुए। राजा, मंत्री, सामन्त और सेनापति से परिवृत्त महाराज ने जैसे बहुरूप धारण किया है इस प्रकार नगर से निकले। एक हजार यक्षों से अधिष्ठित चक्ररत्न मानों सेनापति हो इस प्रकार आगे-आगे चला। महाराज की प्रयाण वार्त्ता को सूचित करने के लिए धूल उड़ उड़ कर चारों ओर व्याप्त हो गयी। ऐसा लगा मानों वह शत्रु का गुप्तचर है। उस समय लक्ष-लक्ष हस्तियों को चलते देखकर लगा जहाँ हस्ती जनमते हैं वहाँ अब और हस्ती नहीं रहे। घोड़े, रथ, खच्चर और ऊँटों को देखकर लगा पृथ्वी पर अन्यत्र कहीं वाहन रहा ही नहीं। समुद्र देखने के समय जिस प्रकार समस्त जगत जलमय लगता है उसी प्रकार पदातिक सेना देखकर लगा—समस्त जगत मनुष्यमय है। पथ अतिक्रम करते समय महाराजने प्रत्येक नगर में प्रत्येक ग्राम में प्रत्येक पथ पर यह बात सुनी—'इस राजा ने एक क्षेत्र की तरह समस्त क्षेत्र को जय कर लिया है। मुनि जिस प्रकार चौदह पूर्व को प्राप्त करते हैं इन्होंने उसी प्रकार चौदह रत्न प्राप्त किए हैं। अन्त्र-सी नवनिधि भी इनके वशीभूत हैं। इतना सब कुछ प्राप्त होने पर भी महाराज किस दिशा में और किस लिए जा रहे हैं ? लगता है अपना देश देखने जा रहे हैं। किन्तु शत्रुओं को जीतने वाला चक्ररत्न इनके आगे-आगे क्यों चल रहा है! दिशा को देखकर तो लगता है ये बाहुबलीको जीतने जा रहे हैं। ठीक ही कहा गया है—महान् व्यक्तियोंका कषाय भी वेगवान होता है। सुनते हैं बाहुबली तो देव और असुरों के लिए भी अजेय हैं। इससे लगता है उन्हें जीतने की इच्छा करनेवाले ये राजा अंगुली से मेरु को धारण करने की इच्छा कर रहे हैं। इस युद्ध में यदि छोटे भाई ने बड़े भाई पर या बड़े भाई ने छोटे भाई पर विजय प्राप्त की तो दोनों ही अवस्था में महाराज अपयश के भागी होंगे।'

सैन्य की पदरज ने मानों विन्ध्य पर्वत हो इस प्रकार चारों ओर अन्धकार

व्याप्त करते हुए, अश्वों की हिनहिनाहट एवं हस्तियों की चिंग्घार रथों की चीं चीं और पैदल सैनिकों की खट-खट शब्द से आनक नामक वाद्य की तरह दिक् समूह को गुंजित करते हुए, ग्रीष्मकालीन सूर्य की तरह पथ पार्श्वस्थ सरिताओं को शुष्क करते हुए, प्रबल अन्धड़ की तरह निकटस्थ वृक्षों को उखाड़ते हुए, सोने के ध्वज पटों से आकाश को बलाकामय करते हुए, सैन्य भार से प्रपीड़ित पृथ्वी को हाथियों के मद जल से शान्त करते हुए और प्रतिदिन चक्र के अनुरूप चलते हुए महाराज सूर्य जिस प्रकार अन्य राशि में जाता है उसी प्रकार बहली देश में जा उपस्थित हुए। और सीमान्त पर छावनी डालकर समुद्र की भाँति मर्यादा की रक्षा करते हुए वहाँ स्थित हो गए।

उसी समय सुनन्दा पुत्र बाहुबली राजनीति रूप गृह स्तम्भ की तरह गुप्तचरों द्वारा चक्री के आगमन की सूचना से अवगत हुए। उन्होंने भी प्रयाण कालीन भेरी बजवायी। उसकी ध्वनि स्वर्ग भेरी-सी प्रतीत हुई। प्रस्थान मंगलकर मानो मूर्तिमान कल्याण हों इस प्रकार गजेन्द्र पर जैसे स्वयं ही उत्साह हो इस प्रकार आरोहित हुए। महा बलवान महा उत्साही समान कार्य में रत अन्य के लिए अभेद्य मानो बाहुबली के ही अंश हों ऐसे राजकुमार, प्रधान और वीर पुरुष परिवृत बाहुबली देवताओं द्वारा परिवृत इन्द्र की तरह सुशोभित हुए। जैसे उनके मन में ही निवास करते हों ऐसे लक्ष-लक्ष योद्धा कोई हस्ती पृष्ठ पर, कोई अश्व पर, कोई रथ पर, कोई पैदल चलकर उसी समय एक साथ बाहर निकले। अपने अमोघ अस्त्र से बलवान पुरुषों ने मानों एक वीरमय पृथ्वी की रचना की हो इस प्रकार अचल निश्चयकारी बाहुबली ने प्रस्थान किया। प्रत्येक चाहते थे कि विजय में कोई उनका हिस्सेदार न हो। अतः उनके सैनिक परस्पर बोल रहे थे मैं अकेला ही समस्त शत्रुओं को जीत सकूँगा। रोहिणाचल के समस्त कंकर ही मणि होते हैं इस भाँति सेना में रणवाद्य बजाने वाले भी वीराभिमानी थे। चन्द्रतुल्य कान्ति सम्पन्न माण्डलिक राजाओं के छत्र से आकाश श्वेत कमल पूर्ण-सा लगता था। प्रत्येक पराक्रमी राजा को देखते हुए और उन्हें स्व बाहु रूप समझते हुए वे अग्रसर हो रहे थे। पथ पर चलते सैनिकों से मानों बाहुबली पृथ्वी को ध्वंस करने और जय वाद्य से आकाश को फोड़ने लगे। यद्यपि देश की सीमा दूर थी फिर भी वे उसी मुहूर्त्त में वहाँ जा पहुँचे। कारण युद्ध के लिए उत्सुक वायु की तरह वेगवान होता है। बाहुबली ने गंगा तटपर ऐसी जगह छावनी डाली जो कि भरत की छावनी से न अधिक दूर थी न अधिक निकट।

सुबह चारण और भाटों ने अतिथि की तरह उन दोनों ऋषभ पुत्रों को

युद्ध के लिए आमन्त्रण किया। रात के समय बाहुबली ने समस्त राजाओं के परामर्श से सिंह-से शक्ति शाली अपने पुत्र सिंहरथ को सेनापति के पद पर नियुक्त किया और मदमस्त हस्ती की तरह उसके मस्तक पर मानो प्रकाशवान प्रताप हो ऐसा देदीप्यमान एक स्वर्ण रण-पट आरोपित किया। वह राजा को प्रणाम कर युद्ध विषयी उपदेश प्राप्त कर मानो पृथ्वी ही प्राप्त हो गयी हो इस प्रकार आनन्दित बना अपने स्कन्धावार को लौट गया। महाराज बाहुबली ने अन्य राजाओं को भी युद्ध की आज्ञा देकर विदा किया। वे स्वयं ही युद्ध की इच्छा रखते थे फिर भी स्वामी की आज्ञा—सत्कारपूर्वक स्वीकार की।

उधर महाराज भरत ने भी रात को ही राजकुमार, राजा और सामन्तों की सम्मति लेकर आचार्य की तरह सुषेण को रण दीक्षा दी अर्थात् सेनापति पद पर नियुक्त किया। सिद्धि मंत्र की तरह स्वामी की आज्ञा स्वीकार कर चक्रवाक की तरह प्रभात की प्रतीक्षा करते हुए सुषेण निज स्कन्धावार को लौट गया। कुमार एवं मुकुटधारी समस्त राजाओं और सामन्तों को बुलाकर भरत ने आज्ञा दी—"वीरों, मेरे छोटे भाई के साथ जो युद्ध होगा उसमें जिस प्रकार तुम लोग मेरी आज्ञा पालन करते हो उसी प्रकार सतर्कता पूर्वक सेनापति सुषेण की आज्ञा का पालन करना। हे पराक्रमी वीरगण, महावत जैसे हाथी को वश में करता है उसी प्रकार तुमलोगों ने भी अनेक पराक्रमी और दुर्मद राजाओं को वश में किया है और वैताढ्य पर्वत पार कर जैसे देवता लोग असुरों को जय करते हैं उसी प्रकार दुर्जय किरातों को तुमने अपने पराक्रम से जय किया है। किन्तु उनमें एक भी—ऐसा नहीं था जिसकी तक्षशिला के राजा बाहुबली के सामान्य पदातिक से तुलना की जा सके। बाहुबली का ज्येष्ठ पुत्र सोमयश अकेला ही हवा जैसे रूई को उड़ा देने में समर्थ है उसी प्रकार समस्त सैन्य को दशों दिशाओं में उड़ा देने में समर्थ है। उसका कनिष्ठ पुत्र सिंहरथ उम्र में छोटा है किन्तु पराक्रम में अकनिष्ठ। वह शत्रु सेना के मध्य दावानल-सा है। अधिक क्या कहूँ उसके अन्य पुत्र और पौत्र प्रत्येक-प्रत्येक एक-एक अक्षोहिनी सेना के लिए मल्ल की तरह हैं और यमराज के हृदय को भयभीत बना देने वाले हैं। उसके स्वामीभक्त सामन्तगण उसके प्रतिबिम्ब ही हों ऐसे उसके ही समान बलशाली हैं। अन्यों के सैन्यदल में तो अग्रणी एक महाबलवान रहता है किन्तु उसकी सेना में तो सभी महाबलवान हैं। युद्ध में महाबली बाहुबली तो दूर उसका एक सैन्य व्यूह भी अभेद्य है। इसलिए वर्षाऋतु में मेघ के साथ जैसे पूर्व दिशा की हवा प्रवाहित होती है उसी प्रकार युद्ध में जाने वाले सुषेण के साथ तुम लोग जाओ।"

अपने स्वामी के अमृत वचनों से मानों पूर्ण बन गए हों इस प्रकार उनके शरीर पुलकावली से व्याप्त हो गए अर्थात् उनके शरीर रोमांचित हो गए। महाराज ने उन्हें विदा दी। वे इस प्रकार अपने स्कन्धावार की ओर गए जैसे विरोधी वीरों की जय लक्ष्मी को पाने के लिए स्वयंवर मण्डप में गए हों। दोनों ऋषभ पुत्रों के कृपारूप समुद्र से पार होने के लिए अर्थात् कृपारूपी ऋण परिशोध करने की इच्छा वाले उभय पक्ष के वीरश्रेष्ठ उस युद्ध के लिए प्रस्तुत हो गए। वे अपने-अपने कृपाण, धनुष, तूनीर, गदा, शक्ति आदि की देवता की तरह पूजा करने लगे। उत्साह से नृत्य करते हुए अपने चित्त के साथ ताल दे रहे हों इस प्रकार वे महावीर आयुधों के सम्मुख जोर-जोर से वाद्य बजाने लगे। फिर जैसे उनके निर्मल यश हों ऐसे नवीन और सुगन्धित उबटन अपने शरीर में लेपन करने लगे। मस्तक पर बंधे वीर पट्ट की तरह ही कस्तूरी बिन्दु अपने-अपने ललाट पर अंकित करने लगे। दोनों दलों में युद्ध की बातचीत हो रही थी इसलिए शस्त्र सम्बन्धी जागरणकारी वीर सैनिकों से मानो डर गयी हों ऐसी नींद नहीं आयी। सुबह जो युद्ध होगा उसमें वीरत्व दिखाने के उत्साही वीर योद्धाओं को वह तीन प्रहर की रात सौ प्रहर-वाली हो ऐसी लगने लगी। किसी प्रकार उन्होंने वह रात्रि व्यतीत की।

[क्रमशः

जैन पत्र-पत्रिकाएँ : कहाँ/क्या

अमर भारती || अक्टूबर-नवम्बर १९८३

उपाध्याय श्री अमरमुनि के प्रवचनों के अतिरिक्त इस अंक में है 'पत्रों के आलोक में पूज्य गुरुदेव' (साध्वी श्री सुयशा), 'ज्योतिर्मय व्यक्तित्व : उपाध्याय श्री अमरमुनि' (डा० अंगराज चौधरी), 'एक महान् सन्त' (रामनारायण जैन), 'युगद्रष्टा सन्त शिरोमणि' (डा० ज्योति प्रसाद जैन), 'बहु आयामी व्यक्तित्व' (डा० प्रेम सुमन जैन) ।

कथालोक || नवम्बर १९८३

इस अंक में है जैन कथा 'अभय की साधना' (युवाचार्य महाप्रज्ञ), 'विश्व वन्द्य महावीर' (प्रदीप 'मधु'), 'विरक्ति सत्ता से' (मुनि ललित प्रभ सागर)।

कुशल-निर्देश || नवम्बर १९७३

इस अंक में है 'श्री सहजानन्दघनजी महाराज का पत्र' (अनु० भँवरलाल नाहटा), 'आनन्दजी कल्याण जी पेढ़ी के संस्थापक श्री मद् देवचन्द्र जी थे' (भँवरलाल नाहटा), 'संवत्सरी : एक धर्म जागरण' (राजकुमारी बेगानी), 'योग-परिवर्तन' (भँवरलाल नाहटा), 'जिन प्रासाद शिल्प' (मिलापचंद गोलेछा) ।

तीर्थंकर || नवम्बर १९८३

संपादकीय के अतिरिक्त इस अंक में है 'समाज सेवा : एक प्रश्न चिह्न' (डा० धर्मवीर भारती), 'समाज सेवा को विनम्र प्रणाम' (अक्षय कुमार जैन), 'साधुमना भाई साहब' (कन्हैया लाल मिश्र 'प्रभाकर'), 'आत्महित ही समाज-हित' (बातचीत-१) (एलाचार्य मुनिश्री विद्यानन्द/डा० नेमीचंद), 'धर्म और समाज-सेवा' (बातचीत-२) (आ० समन्तभद्र/डा० नेमीचन्द), 'अनेकान्त के सहज साधक श्रेयांस जी' (डा० शिव मंगल 'सुमन'), 'साहूजी : दृष्टि और सृष्टि' (लक्ष्मीचन्द जैन), 'साहू श्रेयांस प्रसाद जैन : कवि के वातायन से' (वीरेन्द्र कुमार जैन), 'हम बदलें : समाज बदलेगा' (बातचीत-३) (साहू श्रेयांस प्रसाद जैन/डा० नेमीचन्द जैन), 'संस्कार सादगी, शाकाहार' (बातचीत-४) (अजयकुमार शंभुकुमार कासलीवाल/डा० नेमीचन्द जैन), 'अर्द्ध कथानक' (बनारसीदास अनु० राजकुमारी बेगानी) ।

जैन सिद्धान्त भास्कर ॥ जुलाई १९८३

इस अंक में है 'नैयायिक वैशेषिक जैन तार्किकाणां तर्क विप्रतिपत्ति' (डा० गणेशीलाल सुथार), 'पद्मनन्दि का बारानगर और बड़ा गाँव— धँसान क्षेत्र' (डा० कस्तूरचन्द जैन), 'प्रयाग म्युजियम में जैन यक्षिणी 'अम्बिका' की मूर्ति' (गणेश प्रसाद जैन), 'स्व० सिद्धान्ताचार्य अगर चन्द नाहटा' (डा० ज्योति प्रसाद जैन), 'स्व० ब्र० शीतल प्रसादजी की कृतियाँ' (डा० ज्योति प्रसाद जैन), 'तारण-तरण श्रावकाचार की भूमिका' (स्व० शीतल प्रसाद जी), 'जैन सिद्धान्त भवन में द्रव्य संग्रह की पाण्डुलिपियाँ' (ऋषभ चन्द्र जैन 'फौजदार'), **'Jaina Authors and Their Works'** (Dr. Jyoti Prasad Jain), **'The Human Aura'** (Sheila Ostrancher and Lynn Shrooder), **'Somadeva Vindicated'** (Dr. Jyoti Prasad Jain), **'Elements of Operational Details in the Labdhisara'** (L. C. Jain).

Vol. VII No. 8 : Titthayara : December 1983
Registered with the Registrar of Newspapers for India
under No. R. N. 30181/77

Hewlett's Mixture
for
Indigestion

DADHA & COMPANY
and
C. J. HEWLETT & SON (India) Pvt. LTD.
22 STRAND ROAD
CALCUTTA-700 001